संत साहित्य तथा संत वाणी

संपादक
कमलेश

विकास बुक कम्पनी
नई दिल्ली-110002

प्रधान कार्यालय :
गीना प्रकाशन
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)
मोबाइल : 9466532152, 8708822674
ई-मेल : ginapk222@gmail.com

व्यवस्थापक गीना प्रकाशन ने विकास बुक कम्पनी, नई दिल्ली से पुस्तक प्रकाशित करवाकर मुख्य कार्यालय से वितरित की।

ISBN : 978-93-94628-46-5

© : प्रकाशक

मूल्य : ₹ 400/-

प्रथम संस्करण : सन् 2024

प्रकाशक : विकास बुक कम्पनी
4378/4-बी, जेएमडी हाउस,
मुरारिलाल गली, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मोबाइल : 9643631687
email : vbcompany22@gmail.com

आवरण : के. एस. ग्राफिक्स

शब्द-संयोजन : सानिया कम्प्यूटर्स, दिल्ली

मुद्रक : विशाल कौशिक ऑफसेट प्रेस,
दिल्ली-110093

Sant Sahitya Thathaa Sant Vani
Edited by Kamlesh

अनुक्रम

	भूमिका	5
1.	हिन्दी साहित्य में सन्त, वाणी के विविध आयाम **कमलेश**	9
2.	संत गुरु घासीदास **डॉ. लूनेश कुमार वर्मा**	17
3.	संत साहित्य तथा संत वाणी **विजय पाटील**	23
4.	सन्त साहित्य में जीवन-मूल्य **डॉ. ज्योति रेखा कुमारी**	28
5.	संत कवियों की मूल्य-चेतना और समकालीनता **डॉ. लव कुमार**	37
6.	भारतीय त्यौहारों व पर्वों का धर्म में स्थान **शिखा सिंह, देश दीपक**	46
7.	संत तिरुवल्लुवर और उनका धर्म ग्रंथ **डॉ. के. प्रिया नायडू**	51
8.	ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में दलित चेतना **विक्की, डॉ सीमा अग्रवाल**	55
9.	वेद-पुराण में परिभाषित है संयम और नैतिकता का महत्त्व **गोवर्धन दास बिन्नानी 'राजा बाबू'**	60
10.	भारतीय त्योहार व पर्वों में धर्म का स्थान **डॉ. अनिता कुमारी**	64
11.	रज्जब की बानियों में ज्ञान एवं भक्ति की धारा **प्रोफेसर वंदना श्रीवास्तव**	69
12.	वर्तमान परिवेश में कबीर के वाणी का योगदान **प्रा. रोहिणी गुरुलिंग खंदारे**	78
13.	वर्तमान परिवेश में संत वाणी का योगदान **संदीप कौर**	83

वर्तमान परिवेश में संत वाणी का योगदान

संदीप कौर
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर
मो. 9306189319
sandeepkjosan90@gmail.com

संत-साहित्य भारतीय चिंतन की विभिन्न विचार-धाराओं का अपूर्व समुच्चय है। भारत के लिए अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का अंधकारमय युग था और संत कवि अपने युग की जनता के निम्न स्तर से संबंधित थे, फिर भी इन्होंने ज्ञान की जो ज्योति प्रज्ज्वलित की, वह अद्‌भूत एवं अपूर्व है।

सुसंस्कृत युग और सुशिक्षित समाज के प्रतिष्ठित कवियों द्वारा उच्चकोटि की रचनाओं का प्रणीत होना विशेष महत्त्व की बात नहीं किन्तु अपने पतन की चरमावस्था में भी पतित, दलित एवं जर्जरित भारत का ऐसे महान प्रतिभाषाली, गंभीर चिंतक एवं स्पष्टवक्ता कवियों को जन्म दे देना ऐसा आश्चर्य है जिसका दूसरा उदाहरण विश्व-इतिहास में शायद ही कहीं अन्यत्र मिले।

अतः स्पष्ट है कि संतों की शाश्वत वाणी का महत्त्व मध्ययुग में ही नहीं, भारतीय संस्कृति के लिए हर युग में रहेगा। आधुनिक युग के महान विचारकों ने भी संतों के इस महत्त्व को समझा था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संतों के भगवत् प्रेम के आदर्श को सार्वदेशिक और विश्वजनीत कहा है। संत-साहित्य की चिर-प्रासंगिकता का वर्णन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं– ष्संत-काव्य साधना में तत्पर एवं सर्वजन की मंगलकामना करने वाले भक्तों के सरल-हृदयों की सहज अनुभूति का चित्रण-मात्र है। यह वह प्रकाश-स्तंभ है जो निराशा, वासना, प्रतिरोध और प्रतिहिंसा के अंधकार में भटकते हुए मानव समाज को शताब्दियों से प्रकाश दे रहा है और भविष्य में भी मार्ग प्रदर्शित करता रहेगा।'

मानव-मानव के मध्य जब मानवता का अतीत लोप हो चला था, मानवीय सद्वृत्तियाँ-प्रेम, क्षमा, करुणा, शील, सेवा, विनय, त्याग एवं अहिंसादि चिरंतन मूल्य

जब लुप्तप्रायः होते प्रतीत हुए, ऐसे संक्रांति-युग में मध्यकालीन चिरंतन भक्ति की जो भागीरथी प्रवाहित की उसने मानव में मानवता का संचार किया। निर्गुण भक्तिधारा प्रवाहित कर, रहस्यवाद एवं भक्तिवाद के राम-नामामृत में डुबोकर विच्छिन्न मानव-समुदाय में भावनात्मक एकत्व का मृदु संचार किया। निराकार ब्रह्म के प्रतीक रूप में धर्म, नीति, मानवता, मर्यादा, सत्य, शील, सदाचार एवं लोककल्याणपरक दिव्य मानवीय सद्‌गुणों का समारोहपूर्ण समावेश करके जनमानस में अपूर्व शक्ति, शील एवं सौंदर्यपरक आदर्श बना दिए।

आज भले ही हमने आधुनिकता का मुखौटा ओढ़ रखा हो किन्तु हमारी अवस्था मध्ययुग से भी बदतर है। आज का औसत मनुष्य शंका, उलझन, विषमता-बोध, असंगति तथा अनिश्चय की मानसिकता से ग्रसित है। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण, वैज्ञानिकता, अतिबौद्धिकता, नगरीकरण, बढ़ती हुई आबादी, फ़िल्मों के दुष्परिणाम आदि के कारण मानवीय जीवनमूल्य टूटने लगे हैं और उनमें परिवर्तन होने लगा है। आदमी स्वार्थी हो गया है। वैयक्तिकता, निराशा, कुंठा, अनास्था, घुटन, विद्रोही भावना उसमें छा गई है। नज़दीक के रिश्तों को भी वह भूल गया है। बौद्धिकता का महत्त्व इतना बढ़ रहा है कि मानवीय भावनाओं को वह निगल गई है। निष्ठा, शील, सत्य, उदारता, नैतिकता, प्रामाणिकता, पवित्रता, सदाचार आज मनुष्य में कम दिखाई देते हैं। सौंदर्यात्मक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, मानवीय जीवन-मूल्यों का विघटन होता जा रहा है।

मनुष्य अर्थ के लिए सभी मूल्यों को कुचलता जा रहा है। इस स्थिति को देखकर कमलेश्वर लिखते हैं– 'कितना विचित्र और विकराल है यह दृश्य जो कुछ ही वर्षों में इस देश में उपस्थित हो गया है कि ज़हर खाकर आदमी जीवित रह सकता है पर एक कटोरी दाल पीकर मर सकता है, इमारतें बनती जाएँ और आदमी लुटता जाए, बैंक खुलते जाएँ और आदमी ग़रीब होता जाए, सरकारें बनती जाएँ, आदमी पथराता जाए और खून के आँसू रोता जाए।' अतः इस भीषण वर्तमान परिवेश में संतों की पीयूषवाणी जनसाधारण को सबल प्रदान कर सकती है। आज के त्रस्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान कर, उसका पथप्रदर्शन कर, समाज को सशक्त, निर्दोष एवं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करना केवल संत साहित्य के सामाजिक आदर्शों के वरण से ही संभव है।

संत-साहित्य उतना ही प्राचीन है जितनी प्राचीन मनुष्य के हृदय की उपासना-प्रवृत्ति। संत कवियों ने अपने विचारों में निहित सत्य को शाश्वत एवं विश्वजनीत मानते हुए, उन्हें दूसरों के हितार्थ प्रकट करना चाहा। इन कवियों का काव्य, शास्त्रों का विवेचन अथवा पांडित्य प्रदर्शन नहीं है, अपितु यह काव्य उनके

अनुभवों की उपज है इसलिए यह सीधे जन-मानस में प्रवेश कर जाता है। मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ-जैसी स्वीकारोक्ति द्वारा कबीर स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी प्राप्त किया अपनी साधना और अनुभवों से प्राप्त किया। वे शास्त्रों अथवा पोथियों की बात नहीं करते। अनुभूति सत्य होने के कारण ही कबीर की उक्तियाँ शाश्वत सत्य की तरह आज भी प्रासंगिक हैं।

आज मानव-मानव में धर्म, अर्थ, स्तर आदि के आधार पर भेद चरम पर है। मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन बन बैठा। ऐसे में इस भेद को मिटाकर ही एकता के निर्माण द्वारा स्वस्थ समाज की नींव डाली जा सकती है। संत कवियों के अनुसार यह सारा जगत् एक ही तत्व से उत्पन्न है। इसलिए सभी प्रकार की भेद-दृष्टि मिथ्या है। मानव-मानव में भेद तो परम अज्ञान का द्योतक है। इसी तत्व दृष्टि से प्रेरित संत कवियों ने जाति-पाँति, छूआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शुद्र के भेद का विरोध किया। इसमें संदेह नहीं कि इन भेदों को दूर करने पर एक सुन्दर समाज की रचना हो सकती है। ऐसा समाज जिसमें मनुष्य केवल मनुष्य रूप में स्थापित हो सके- जो आज तक संभव नहीं हुआ। कबीर कहते हैं कि एक ही ज्योति सब में व्याप्त है, दूसरा कोई तत्व है ही नहीं—

एकहि ज्योति सकल घट व्यापक दूजा तत्व न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो भटकि मरै जनि कोई॥

अतः जाति-धर्म के आधार पर भेदभाव करना व्यर्थ है। संत कवि सार्वभौम मानव-धर्म के प्रतिष्ठापक थे। रैदास का भी मानना था कि जब तक समाज में जाति-धर्म का भेद रहेगा, तब तक मानवता की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती—

जात-पात के फेर महि, उरझि रहुइ सब लोग।
मानुषता को खात है, 'रैदास' जात का रोग॥

मानवता की प्रतिष्ठा के बगैर समाज में किसी भी प्रकार के सुधार की बात करना छलावा मात्र है। मानवता के लोप के कारण ही आज का समाज सांप्रदायिकता की आग में झुलस रहा है। चारों ओर दहशत और आतंकवाद का बोल-बाला है। धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर नेतागण अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंक रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम में अनाम दूरियाँ आ गई है। इन विपरीत परिस्थितियों में संप्रदायवाद के विरोध के माध्यम से मानवीय एकता का मार्ग संत-साहित्य से ही निकाला जा सकता है। संत कवियों ने राम-रहीम के पार्थक्य को समाप्त किया।

संत कवियों ने लोकधर्म की स्थापना की और जन-सामान्य को रूढ़ तथा जर्जर अंधविश्वासों से अलग कर मानवीयता के नए सूत्र में आबद्ध किया। साथ ही बाह्याडंबर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के भी विरोधी थे। वर्तमान परिवेश में उच्च

विद्याविभूषित होने के बावजूद लोगों में बाह्याडंबर, मिथ्याचार आदि का बोलबाला है। लोग अंधविश्वास में अपना विवेक खो चुके हैं। वर्तमान पर दृष्टिक्षेप करने से यह प्रतीत होता है कि मध्यकालीन परिस्थिति से वर्तमान अधिक भिन्न नहीं है। संतकवियों का एकमात्र उद्देश्य था जनता को जागरूक कर उनका पथ प्रदर्शन करना। कबीर निराकार-निर्गुण की भक्ति का प्रतिपादन सोद्देश्य करते हैं, जिसके मूल में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हैं और कर्मकांड, तीर्थाटन आदि का विरोध भी इसी आशय से है। कबीर के अनुसार जो लोग मूर्ति को कर्ता मानकर पूजते हैं वे मृत्यु की काली धारा में डूब जाते हैं–

पाहन केरा पूतरा पूजै करतार।
इहि भरोसे जे रहे बूडे काली धार॥

तप-जप, रोज़ा-नमाज यह सब मन को परिष्कृत करने के साधन है। यदि मन साफ़ नहीं है तो 'वजू' करने से क्या लाभ? जप-मंजन से क्या होगा? मस्जिद में जाकर सिर नवाने से क्या बनेगा। नमाज गुज़ारना या हज और काबे जाना तभी सार्थक है जब दिल में कपट नहीं है। तीर्थाटन की व्यर्थता को प्रतिपादित करते हुए रैदास कहते हैं–

तीरथ बरत न करौ अंदेशा। तुम्हारे चरन कमल भरोसा।
जहं तहं जाओ तुम्हारी पूजा। तुमसा देव और नहीं दूजा॥

आज रिश्तों में अपनत्व का भाव नहीं है। रिश्तों में दरारें पड़ रही हैं और परिवार विघटित हो रहे हैं। इसका प्रधान कारण है पारस्परिक प्रेम का अभाव। आज 'प्रेम' की जगह 'स्वार्थ' ने ले ली है। परिणामस्वरूप मनुष्य का दायरा 'स्व' तक सिमटकर रह गया है। संत कवि प्रेम के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

इसी प्रेमभावना के कारण इन कवियों ने एकता स्थापित की। इन कवियों का प्रेम आध्यात्मिक होकर भी लोकपरक तथा वास्तविक संदर्भों में मानवीय है। साथ ही कबीर ने मनुष्य की धन-संचय की स्वार्थी प्रवृत्ति पर भी चोट की है। आज समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानव मूल्य न होकर केवल धन होता जा रहा है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। प्रत्येक मनुष्य धन के पीछे बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ रहा है। फलतः किसी के भी मन में 'समाधान' नदारद है। अतः कबीर ने मध्यकाल में ही मनुष्य की इस लोभी प्रवृत्ति पर चोट की है–

सांई इतना दीजिए जामै कुटुंब समाए।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु ना भूखा जाए॥

मनुष्य को उसका चरित्र ही ऊँचा उठाता है। अतः चारित्रिक श्रेष्ठता को

बनाए रखना अनिवार्य है। किन्तु वर्तमान परिवेश की विडंबना यह है कि मनुष्य का चारित्रिक पतन चरम पर पहुँच गया है जिसके कारण समाज विनाश के कगार पर है। संत कवि स्थान-स्थान पर बहुत स्पष्टता से चारित्रिक श्रेष्ठता की बात कहते हैं। वे मनुष्य की वाणी और कर्मों के समन्वय पर बल देते हैं, जिसका नितांत अभाव आज के नेताओं में दिखाई देता है। कबीर कहते हैं कि जो अपनी वाणी के अनुरूप कर्म नहीं करता वह श्वान है और अपने पापों के कारण नर्क भोगता है।

अनैतिकता एवं अनाचार के इस युग में मनुष्य दिन-व-दिन आलस्य की ओर उन्मुख हो रहा है। कर्म से पलायन करने के कारण ही वह संत्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है। ऐसे में संत कवियों द्वारा प्रतिपादित कर्म का संदेश उपयुक्त प्रतीत होता है। उनके अनुसार कर्म ही मनुष्य का धर्म है।

समग्रतः संत-साहित्य दुरूहता तथा जटिलता का साहित्य नहीं है, वरन यह मनुष्य की सहजता तथा स्वाभाविक मनः स्थितियों का साहित्य है। इसमें जनसामान्य की आशा-अकांक्षा, सुख-दुख सन्निहित है। जन-जागरण की चेतना लेकर स्फुरित हुआ यह साहित्य आशावादी मूल्यों की स्थापना करता है। सामाजिक जड़ता एवं अराजकता से घिरे वर्तमान जटिल परिवेश में हम संत-साहित्य के सामाजिक आदर्शों को आधुनिक संवेदना के अधिक निकट पाते हैं। संत-साहित्य में मानव की क्षुद्रताओं, सीमाओं, स्वार्थपरता, असत्यप्रियता, संकीर्णता, अर्थलोलुपता, कामुकता आदि पर प्रहार हुआ है। संत कवियों ने जीवनदायिनी शक्तियों की ओर जनसामान्य का ध्यान आकर्षित किया और समाज को सशक्त, निर्दोष एवं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा की है।